Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2022 SHISRRJ | Volume 5 | Issue 6 | ISSN : 2581- 6306

# मुण्डकोपनिषद् : विहङ्गम दृष्टिकोण

राघवेन्द्र पाण्डेय

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

**शोधसारांश–** मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद के मन्त्रभाग के अन्तर्गत है। यह अथर्ववेद के शौनकीया शाखा का उपनिषद् है। इस उपनिषद् में तीन मुण्डक हैं, प्रत्येक मुण्डक में दो–दो खण्ड हैं तथा कुल चौसठ मंत्र हैं।

**मुख्य शब्द–** मुण्डकोपनिषद्, अथर्ववेद, विहङ्गम, शौनकीया, ब्रह्मविद्या, शौनक।

मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड में ब्रह्मविद्या की आचार्य परम्परा दी गयी है। यहाँ बताया गया है कि यह विद्या ब्रह्मा जी से अथर्वा को प्राप्त हुई और अथर्वा से क्रमशः अङ्गी और भारद्वाज के द्वारा अङ्गिरा को प्राप्त हुई। उन अङ्गिरा मुनि के पास महागृहस्थ शौनक ने विधिवत् आकर पूँछा कि 'भगवन्! ऐसी कौन सी वस्तु है जिस एक के जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है।'' महर्षि शौनक का यह प्रश्न प्राणिमात्र के लिए कुतूहलजनक है, क्योंकि सभी जीव अधिक से अधिक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

इसके उत्तर में महर्षि अङ्गिरा ने परा अपरा नामक दो विद्याओं का निरूपण किया है।[1] जिसके द्वारा ऐहिक और आमुष्मिक पदार्थों का ज्ञान होता है उसे अपरा विद्या कहते हैं, तथा जिससे अखण्ड, अविनाशी, निष्प्रपञ्च परमार्थतत्त्व का बोध होता है उसे परा विद्या कहा गया है।[2] सम्पूर्ण जगत् अपरा विद्या का विषय तथा संसारी पुरुषों की प्रवृत्ति भी उसी ओर है। उसके द्वारा ऐसे किसी एक ही अखण्ड तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता जो सम्पूर्ण ज्ञानों का अधिष्ठान हो क्योंकि उसके विषयभूत जितने भी पदार्थ हैं वे सब के सब परिच्छिन्न ही है। अपरा विद्या वस्तुतः अविद्या ही है, व्यवहार में उपयोगी होने के कारण उसे विद्या कहा जाता है। अखण्ड और अव्यय तत्त्व के जिज्ञासु के लिए वह त्याज्य ही है।

ग्रन्थ का पूर्वार्ध प्रधानतया अपरा विद्या का निरूपण करता है और उत्तरार्द्ध में मुख्यतया परा विद्या और उसके प्राप्ति के साधनों का विवेचन किया गया है। उस उपनिषद् की वर्णनशैली बड़ी ही उदात्त एवं हृदयहारिणी है, जिससे स्वभावतः ही जिज्ञासुओं का हृदय इसकी ओर आकर्षित हो जाता है।

इसके द्वितीय मुण्डक में अग्नि की चिनगारियों की तरह ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति एवं लय का वर्णन करते हुए ऊँकार रूपी धनुष एवं आत्मा रूपी बाण से परमात्मा का लक्ष्यबोध करना, ब्रह्म का स्वरूप

**Copyright: ©** the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

एवं ब्रह्म प्राप्ति का महत्त्व है। तृतीय मुण्डक में शरीर रूपी एक ही वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षियों के उदाहरण सहित अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ब्रह्म प्राप्ति तथा ब्रह्मवेत्ता की गति एवं महत्ता का वर्णन है। यहाँ पर कर्मकाण्ड की हीनता तथा दोषों के अनन्तर ब्रह्म ज्ञान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। द्वैतवाद का प्रधान स्तम्भभूत मन्त्र–'द्वासुपर्णासयुजा' इसी उपनिषद् का वचन है। 'वेदान्त' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इसी उपनिषद् में किया गया है।

ब्रह्म का सच्चा स्वरूप अव्यक्त और अचिंत्य है। आँख, कान इत्यादि ज्ञानेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पाद इत्यादि ज्ञानेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पाद इत्यादि कर्मेन्द्रियाँ तथा मन और प्राणादि से रहित वह अज, अनादि नित्य, विभु, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, दिव्य और वर्णनातीत है।[3] वे जगदात्मा परमेश्वर समस्त भूतों के परम कारण कैसे हैं, सम्पूर्ण जगत् उनसे किस प्रकार उत्पन्न होता है? इसका उत्तर इसी उपनिषद् में है। परब्रह्म परमेश्वर ही इस जड़–चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् के निमित्त और उपादान कारण हैं, जिसे तीन दृष्टान्तों से समझा जा सकता है। पहले मकड़ी के दृष्टान्त से यह बात कही गयी है जिस प्रकार मकड़ी जाले को बुनती है फिर निगल जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर अपने अंदर सूक्ष्म रूप से लीन जड़–चेतन रूप जगत् को सृष्टि के आरम्भ नाना प्रकार से उत्पन्न करके, प्रलयकाल में पुनः लीन कर लेते हैं। दूसरे दृष्टान्त में जिस प्रकार पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, उसमें पृथ्वी का कोई पक्षपात नहीं होता, उसी प्रकार जीवों के विभिन्न कर्मरूप बीजों के अनुसार ही भगवान् उनको भिन्न योनियों में उत्पन्न करते हैं अतः उनमें किसी प्रकार निर्दयता का दोष नहीं है। तीसरे दृष्टान्त में मानव शरीर जिस प्रकार मनुष्य के जीवित शरीर से 'केश और रोएँ उत्पन्न होते हैं और बढ़ते रहते हैं–उसके लिए कोई कार्य नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार परब्रह्म परमेश्वर से यह जगत् स्वभाव से ही समय पर उत्पन्न हो जाता है और विस्तार को प्राप्त होता है, इसके लिए भगवान् कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।[4] इसीलिए भगवान् ने गीता में कहा है कि ''मैं इस जगत् को बनाने पर भी अकर्त्ता ही हूँ।''[5] उदासीन की तरह स्थित रहने वाला मुझ परमेश्वर को वे कर्म लिप्त नहीं करते हैं।'6 वेदों में जिन कर्मों को करने का विधान है और जिन्हें सूक्ष्मदर्शी विद्वानों ने वेदों का ज्ञान प्राप्त करके प्रकट किया है उन्हें सत्यता के साथ सदैव करना चाहिए क्योंकि जगत् में मनुष्य का मार्ग अपने किए हुए कर्मों से ही बनता है–

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि

त्रेतायां बहुधा संतानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।। मुण्डको.–1.2.1

कर्मो में मुख्य यज्ञ है, अतः पहले उसी को करने की शिक्षा इस उपनिषद् में दी गयी है। यज्ञ दो प्रकार से किये जाते हैं–एक फल की इच्छा से, दूसरे कर्त्तव्य पालन करने के लिए केवल धर्म समझकर फल की इच्छा को छोड़कर करना, इनमें से पहला मनुष्य को आवागमन के चक्र में रखता

है और दूसरा मोक्ष के कारणों में से एक का कारण बना करता है। दोनों प्रकार की भावनाओं वाले यज्ञ का प्रारम्भ इसी प्रकार किया जाता है जैसा कि निर्देश दिया गया है–

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने।

तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपायेत्।। मुण्डको.–1.2.2

अर्थात् निश्चय ही जब समिधाओं से अग्नि के प्रदीप्त होने पर ज्वालाएँ धधक उठती हैं तब घृत की दो क्रम से आहुतियाँ देवें, श्रद्धा से होम किया हुआ हो।

यज्ञ की अग्नि की जो ज्वालाएँ यज्ञ के लिए प्रज्ज्वलित होती हैं वे काली, तीक्ष्ण, मन के वेग वाली लाल रंग की, धुएँ के रंगवाली, चिंगारी वाली और अनेक रूप वाली प्रदीप्त होती हैं।[7] जब विद्वान् इन प्रज्ज्वलित अग्नियों में यथाकाल और यथा विधि हवन करता है और उसके बदले में कुछ इच्छा नहीं रखता है तो इस निष्काम यज्ञ के बदले में उसे अद्वितीय ब्रह्म की प्राप्ति होती है।[8]

मुण्डकोपनिषद् में इसके लिए भी सावधान किया गया है कि सकामयज्ञ अच्छा कर्म है, अच्छा होने पर भी उसकी अपनी सीमा है। वह सीमा पुत्र–प्राप्ति आदि अभ्युदय (लोकोन्नति) तक सीमित है। इससे मोक्ष अथवा ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः जो लोग यज्ञों को ही सब कुछ समझते हैं और उन्हीं को मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते हैं वे वास्तव में अज्ञानी हैं और निन्दा के पात्र हैं। यह अट्ठारह ऋत्विजों से किया हुआ सकाम यज्ञ अस्थिर और अदृढ़ है। जो लोग इसे श्रेय का साधन मानते हैं, वे अज्ञानी पुरुष बुढ़ापे और मृत्यु के बन्धन से नहीं छूटते हैं।[9] ब्रह्मविद्या की अपेक्षा यज्ञ आदि कर्मकाण्ड हीन हैं इसका फल अस्थायी है। इससे जीव पुनः जन्म मृत्यु के बन्धन में आता है। अविद्या के भीतर स्थिर होकर भी अपने आप बुद्धिमान बनने वाले और अपने को विद्वान् मानने वाले वे मूर्ख लोग बार–बार कष्ट सहन करते हुए ठीक वैसे ही भटकते रहते हैं जैसे अंधे को मार्ग दिखाने वाला अंधा ही हो। अपने लक्ष्य तक न पहुँचकर बीच में ही इधर–उधर भटकते हैं और कष्ट भोगते रहते हैं।[10]

इसी उपनिषद् में आगे और स्पष्ट कहा गया है कि जो लोग इष्ट और आपूर्त को ही सबसे अधिक श्रेष्ठ मानते हैं, इसके अतिरिक्त कोई और नहीं है, ऐसे पुरुष वास्तव में मूढ़ हैं और सकाम यज्ञ के फलस्वर्ग को भोगकर, इस लोक, साधारण मनुष्य लोक और इससे भी हीन लोकों को प्राप्त होते हैं।[11] पुण्य के क्षीण होने पुनः इस मृत्युलोक में आना पड़ता है।[12]

इहलोक और परलोक के सुखों का दाता वही परब्रह्म परमेश्वर है। उसी विराट् पुरुष से अनेक प्रकार के देव, साधक, मनुष्य, पशु–पक्षी, प्राण आदि प्राणियों के जीवन साधन, धान और जौ आदि खाद्य वस्तुएँ सत्य, तप, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य और कर्त्तव्य विधान आदि इसलिए उत्पन्न होते हैं कि जिससे मनुष्य

इस लोक और परलोक की सिद्धि प्राप्त कर सकें।13 इस लोक और परलोक के अभ्युदय और निःश्रेयस के सभी साधन उसी विराट् परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं। सात प्राण विचरते हैं वे सब उसी विराट् पुरुष से उत्पन्न होते हैं।14 उसी पुरुष की सत्ता सामर्थ्य से समुद्र, पहाड़ और नदियाँ उत्पन्न होकर अपना–अपना कार्य करती हैं और उसी के सामर्थ्य से अनेक प्रकार के रस भी उत्पन्न होते हैं जिनके द्वारा शरीर में स्थित रहकर जीवात्मा का निवास स्थान बनता है।[15]यही विराट् पुरुष ही विश्व, कर्म, तप, ब्रह्म और परम अमृत है। हे प्रिय! जो हृदयाकाश में स्थित इस पुरुष को जानता है वह इस जगत् में अविद्या ग्रन्थि को खोल देता है। वह समस्त अविद्याओं और मिथ्याज्ञानों से छूट जाता है।[16]

कार्य और कार्यकारण स्वरूप उन परात्मपर पुरुषोत्तम को तत्त्व से जान लेने पर इस जीवात्मा के हृदय की गाँठ खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं[17] और इस मुमुक्ष के समस्त वासना पैदा करने वाले सकाम कर्म क्षीण हो जाते हैं। इस प्रकार जिज्ञासु उस परमात्मा का विशेष ज्ञान प्राप्त करके इस आनन्द और अमरता के पुञ्ज को प्राप्त कर लेता है।

आगे कहा गया है कि प्रकाशमय सूक्ष्म आनन्दमय कोश में वह ब्रह्म जो मल, और कलारहित, पवित्र और समस्त प्रकाशों का प्रकाश स्थित है, उसे ब्रह्मवित् तथा उसके अनुकूल अभ्यासों को करने व जानने वाले जान लेते हैं।18 प्रकृति रूपी वृक्ष पर दो पक्षी (जीवात्मा, परमात्मा) बैठे हैं उनमें से एक कर्मफल का भोक्ता है और दूसरा केवल द्रष्टा एवं साक्षी है। आत्मा–परमात्मा के भेद का निरूपण किया गया है। जिस प्रकार गीता में जगत् का अश्वत्थ वृक्ष के रूप में वर्णन किया गया है, उसी प्रकार 'मुण्डकोपनिषद्' में भी शरीर को पीपल के वृक्ष का और जीवात्मा तथा परमात्मा को पक्षियों का रूप देकर वर्णन किया गया है। यह मनुष्य शरीर एक वृक्ष है। ईश्वर और जीव ये सदा साथ रहने वाले दो मित्र पक्षी है। ये इस शरीर रूपी वृक्ष में एक साथ ही हृदय रूप घोसले में निवास करते हैं। इन दोनों में से एक जीवात्मा तो उस वृक्ष के फलरूप अपने कर्म फलों को अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख दुःखों को आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा ईश्वर उनकर्म फलों से किसी प्रकार का कोई भी सम्बन्ध न जोड़कर केवल देखता रहता है।[19] सत्य, तप और ब्रह्मचर्य से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। निष्पाप व्यक्ति ही उस हृदयरूप ब्रह्म को देख पाते हैं।[20] परमात्मा सत्यस्वरूप हैं, अतः उनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य में सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। परमात्मप्राप्ति के लिए तो सत्य अनिवार्य साधन है ही, जगत् में दूसरे सब कार्यों में भी अन्ततः सत्य की विजय होती है, झूठ की नहीं।[21] जो लोग मिथ्या भाषण, दम्भ और कपट से उन्नति की आशा रखते हैं वे अन्त में बुरी तरह से निराश होते हैं। सत्य से ही देवयान प्राप्त होता है। सत्य से ही परमपद की प्राप्ति होती है। ब्रह्म समुद्र की तरह है। तत्त्वज्ञानी पुरुष ब्रह्म में उसी प्रकार लीन हो जाता है, जैसे नदियाँ अपना नाम और रूप छोड़कर समुद्र में लुप्त हो जाती है।[22]

## संदर्भ सूची


1. द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। मुण्डकोपनिषद्– 1.1.4
2. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। मुण्डकोपनिषद्– 1.1.5
3. मुण्डकोपनिषद् 1.1.6
4. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति। यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।। मुण्डको.–1.1.7
5. गीता–4.13
6. गीता–9.9
7. काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूमवर्णा।

   स्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।। मुण्डको– 1.2.4
8. एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।
9. तं न्यन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयोः यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।।

   एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।

   प्रियां वाचमाभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।।

   मुण्डको.– 1.2.5–6
10. प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।

    एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।। –मुण्डको.–1.2.7
11. अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितं मन्यमानाः।

    जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।। मुण्डको. 1.2.8
12. इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः।

    नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति।। मुण्डको– 1.2.10
13. क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोके विशन्ति। गीता–9.21
14. तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्याः मनुष्याः पशवो वयांसि।

    प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।। मुण्डको. 2.2.7
15. सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।

सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।। मुण्डको. 2.2.8

16. अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः।

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।। मुण्डको. 2.1.9

17. पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं सोऽविद्या ग्रन्थिं विकरतीह सोम्य। मुण्को. 2.1.10

18. भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।। मुण्डको. 2.2.8

19. हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।

तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः।। मुण्डको. 2.2.9

20. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। मुण्डको. 3.1.1

21. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः।। मुण्डको. 3.1.5

22. सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानं।

येनात्मक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्।। मुण्डको. 3.1.6

23. यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।

तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तं परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। मुण्डको. 3.2.8